अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

हिंदी दलित साहित्य की रचनाओं में यथार्थवाद

शोधार्थीः-
कु. सरिता (हिंदी-विभाग)
डी. एस. बी. परिसर, नैनीताल
E-mail ID:saritagdrkm791@gmail.com

सारांशः- हिंदी दलित साहित्य भारतीय हिंदी साहित्य का एक अति आवश्यक अंग है, जिसमें सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव तथा संघर्ष को गहराई से समझाने के साथ-साथ उसकी सच्चाई सामने रखता है। दलित साहित्य ने भारतीय समाज में जातिगत आधारित भेदभाव, सांस्कृतिक और सामाजिक विषमताओं की अवहेलना की है। यह भारतीय समाज के सबसे उपेक्षित और हीन माने जाने वाले निम्न वर्ग की आवाज निष्पक्षता के साथ सामने रखता है। हिंदी दलित साहित्य भारतीय समाज के कठोरतम, कड़वे तथा वास्तविकता पर आधारित जातिगत शोषण, उत्पीड़न और भेदभाव को प्रमाणिकता के साथ उजागर करता है। यह साहित्य काल्पनिकता पर आधारित बातें नहीं कहता, बल्कि हकीकत में घटित घटनाओं को प्रामाणिक रूप से सामने रखता है।

दलित साहित्य के रचनाकारों द्वारा निजी तौर पर भोगे गए अनुभवों को केंद्र में रखकर रचनाएं की गई हैं, जिसमें लेखकों ने सहानुभूति नहीं, स्वानुभूति पर आधारित घटनाओं को उजागर किया है। दलित साहित्य का उद्भव भारतीय समाज के जातिवादी कुप्रथाओं, उनके विपरीत प्रभावों के विरुद्ध मजबूत रुकावट के स्वरूप में हुआ। दलित साहित्य न सिर्फ कुरीतियों, कुप्रथाओं, जातिवादी मानसिकता को उजागर करता है, बल्कि यह सामाजिक भेदभाव, असमानताओं को भी सामने लाता है। यह साहित्य दलितों के उन कष्टों, संघर्षों को उजागर करता है, जिसे उन्होंने अपने हक, अधिकार तथा सम्मान को पाने के लिए भोग है।

बीज शब्दः- असमानता, जातिगत भेदभाव, संघर्ष, विषमता, कुरीति, सहानुभूति, स्वानुभूति, अवहेलना, दलित साहित्य, उपेक्षित, तथा निष्पक्षता।

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

हिंदी दलित साहित्य का उद्‌भव 20वीं सदी के शुरुआत में हीरा डोम की सुप्रसिद्‌ध कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। जो 'सरस्वती' पत्रिका में 1914 में छपी। यह कविता हिंदी दलित साहित्य की प्रथम कृति मानी जाती है। उस समय भारतीय समाज में जातिगत आधारित सामाजिक भेदभाव, सांस्कृतिक कुप्रथाओं के विरुद्‌ध सामाजिक जागरूकता बढ़ने लगी। एक तरफ स्वतंत्रता की मांग चरम पर थी तो दूसरी ओर भारतीय समाज के भेदभावपूर्ण इस कुप्रथा को समाज से समूल नाश करने की तैयारी चल रही थी। भारतीय समाज में एक तरफ स्वतंत्रता की मांग के लिए लेखकों ने कलम चलाना शुरु किया तो दूसरी तरफ अपने ही देश की सदियों से चली आ रही भेदभावपूर्ण परिपाटी को उजागर करने के लिए एक तबके ने अपनी कलम चलाई और जातिवादी मानसिकता के विरोध में लिखना प्रारंभ किया। दलित साहित्य लेखन मराठी भाषा में शुरू हुआ। जब हिंदी में दलित साहित्य लिखे जाने लगे तो तात्कालिक हिंदी क्षेत्र के संपादक उन्हें छापने से मना कर देते थे, क्योंकि उन्हें दलितों की रचनाओं के विषय रुचिकर नहीं लगते थे। इस बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- "दलित साहित्य का उद्देश्य एक वैकल्पिक संस्कृति और समाज में दलितों की एक अलग पहचान सृजित करना है। दलित लेखक किसी समूह, मसलन किसी जाति विशेष, सम्प्रदाय के खिलाफ नहीं है। लेकिन व्यवस्था के विरुद्‌ध है... चाहे वह सरकारी, सामाजिक, धार्मिक संस्था की व्यवस्था हो, जो अपनी सोच और दृष्टिकोण से दलितों का शोषण और दमन करती हो।"[1]

दलित साहित्य ने समाज में दलितों के विरुद्‌ध व्याप्त विषमता, असमानता, उनका संघर्ष और उनकी पीड़ा की कहानियों को प्रमुखता से लिखना शुरू किया। इसके माध्यम से दलितों के अस्तित्व की मांग उठने लगी। दलित साहित्य लेखन में न सिर्फ जातिगत भेदभाव, कुप्रथाओं का विरोध किया जा रहा था, बल्कि यह उन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और नैतिक विचारधाराओं का भी विरोध कर रहा था जिसने दलितों को उनके मौलिक अधिकारों, मूलभूत सुविधाओं से अभावग्रस्त किया। जातिगत भेदभाव, छुआछूत, अस्पृश्यता के विरोध में बाबा साहब ने बड़े पैमाने पर आंदोलन किया। उनकी अगुवाई में दलितों द्वारा 1927 में महाड़ आंदोलन किया गया जिसका लक्ष्य सार्वजनिक तालाब से पानी लेने का हक प्राप्त करना था। यह दलितों की प्रथम ऐतिहासिक लड़ाई थी जिसमें उन्हें सफलता मिली। बाबा साहब इस आंदोलन का विस्तारपूर्वक वर्णन अपनी रचना

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

'अछूतों का विद्रोह' में करते हैं- "महाड़ में चाबदार तालाब एकमात्र ऐसा तालाब था, जहां से अछूतों को छोड़कर कोई भी पानी ले सकता था। तालाब नगर पालिका के अधीन था और सार्वजनिक था। अछूतों को पानी केवल नगर से दूर अछूतों के क्षेत्र में स्थित कुएं से ही मिल सकता था।"[2]

डॉ. अंबेडकर के आंदोलनों का ही असर था जिसने दलितों को अपनी पीड़ा, दुःख-दर्द, संघर्ष को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। दलित साहित्य का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक सुधार करना था। यह न सिर्फ समाज के भीतर मौजूद भेदभाव, जातिवाद, विषमता, छुआछूत को उजागर करता है, बल्कि दलितों की भोगी हुई पीड़ा और उनके अभावग्रस्त जीवन को भी बयां करता है। दलितों के संघर्ष को हमेशा नकारात्मक दृष्टिकोण से देखा गया। दलित मुक्ति के लिए डॉ. अंबेडकर ने जो संघर्ष किया उसे वामपंथियों ने भी पूर्ण रूप से स्वीकार करने में आनाकानी की। इस बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- "दलित-संघर्ष को हमेशा नकारात्मक ढंग से देखा गया। उनके दुःख-दर्द, पीड़ा, शोषण, भेदभाव, अपमान से भरे जीवन को अनदेखा करके उन पर तरह-तरह की तोहमत मढ़ी गई। यहाँ तक कि वामपन्थी भी डॉ. अम्बेडकर को साम्राज्यवादियों का पिट्ठू कह रहे थे। उनकी 'वर्ग-चेतना' में कहीं भी 'वर्ण-चेतना' का उल्लेख नहीं था। जबकि डॉ. अम्बेडकर का आन्दोलन दलित-मुक्ति का संघर्ष था। यही स्थिति उस दौर के रचनाकारों की भी थी।"[3]

डॉ. अंबेडकर की अगवाई में होने वाले आंदोलनों ने देश में भूचाल ला दिया। देश के हर कोने में उनके आंदोलन का प्रभाव दिखाई देने लगा। संपूर्ण भारत का दलित समुदाय इन आंदोलनों से जुड़ने लगा तथा हिंदू सामाजिक व्यवस्था से मुकाबले के प्रकरण देश के हर हिस्से से आने लगे। दलित वर्ग गांव में बनाई गई रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध करने लगे जो उन पर सदियों से थोपी गई थी। परिणामस्वरुप संपूर्ण देश में हिंदुओं ने दलितों के साथ हिंसक प्रवृत्ति अपनायी। सामाजिक, सांस्कृतिक निषेध के कारण दलितों को गांव छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। यह गुलामी के खिलाफ प्रथम खुली चुनौती थी। आग में घी डालने का काम डॉ. अंबेडकर के इन शब्दों ने किया- "दलितों तुम विद्रोह करो। तुम्हारे पास खोने के लिए गुलामी के सिवाय कुछ नहीं है, पर पाने के लिए आजादी है।"[4]

भारतीय हिंदी दलित साहित्य का आधार रखने में अनेक लेखकों तथा विचारकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनमें महत्वपूर्ण नाम हैं- बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर, कंवल भारती,

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह 'बेचैन', तुलसीराम, डॉ. धर्मवीर तथा माता प्रसाद। मराठी के प्रमुख लेखकों में शरणकुमार लिंबाले, नामदेव ढसाल आदि का नाम आता है। इन लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलितों के उत्पीड़न, उनके जीवन संघर्ष और उनके अधिकारों के बारे में समाज को जागरूक किया। उनके पश्चात प्रमुख दलित लेखक रहे हैं- दया पवार, उर्मिला पवार। तमिल भाषा की प्रमुख लेखिका- बामा, मीना कांदासामी आदि। सूरज येंगड़े अंग्रेजी में लिखने वाले प्रमुख समकालीन युवा दलित लेखक जो वर्तमान परिस्थितियों, सामाजिक भेदभाव तथा विकृत मानसिकता को उजागरकर लिख रहे हैं। हिंदी दलित साहित्य की विस्तृत परिभाषा देते हुए बाबूराव बागुल कहते हैं- "जब साहित्य सामान्य जन के साथ शूद्र-अतिशूद्र के साथ-सम्बद्ध होता है, तब वह सम्यक परिवर्तन का अर्थात् आर्थिक, राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक परिवर्तन का पक्षधर बन जाता है। इसी पक्षधरता को 'दलित साहित्य' ने भी स्पष्ट रूप से पहचाना है। वह भी इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि शोषक-सत्ता ने सदैव अपने अनुकूल प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धारणाओं और व्याख्याओं को जीवन्त बनाए रखने की चेष्टा की है तथा उसने प्रतिकूल पड़ने वाली प्रथाओं को नष्ट किया है। इसलिए दलित साहित्य हिन्दू पौराणिकता, वैचारिकता, मानसिकता, संस्कार, आदर्शों, धारणाओं, प्रतीकों और उनकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिणतियों को नकारता है।"[5]

हिंदी दलित साहित्य के सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ में भारतीय समाज में जातिवादी प्रणाली प्राचीन समय से विद्यमान थी। यह सामाजिक प्रणाली भारतीय समाज को अनेक वर्गों तथा जातियों में बांटती है जिसमें कतिपय जातियां मानसिक, नैतिक, शारीरिक तथा सांस्कृतिक स्वरूप से 'उच्च' कही गई हैं तो कतिपय जातियों की 'निम्न' जातियों में गणना की जाती है जिनमें सबसे निम्न मानी जाने वाली जातियों को 'दलित' या 'अछूत' कहा गया है जो सामाजिक और मानसिक रूप से सर्वाधिक प्रताड़ित की जाती रही हैं। दलितों और शूद्रों के साथ सवर्णों द्वारा जो क्रूर और घृणित व्यवहार किया जाता था उसका वर्णन ज्योतिबा फुले बखूबी करते हैं। दलितों की पीड़ादायक गुलामी का सचित्र वर्णन महात्मा फुले ने अपनी रचना 'गुलामगिरी' में किया है। जिसमें ज्योतिबा फुले लिखते हैं- "शूद्रों में से कई जातियों को रास्ते पर थूकने की भी मनाही थी। इसलिए उन शूद्रों को ब्राह्मणों की बस्तियों

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

से गुजरना पड़ता तो अपने साथ थूकने के लिए मिट्टी के किसी एक बर्तन को रखना पड़ता था। समझ लो, उसकी थूक जमीन पर पड़ गई और उसको ब्राह्मण पंडे ने देख लिया तो उस शूद्र की खैर नहीं।"[6]

हिंदी दलित साहित्य ऐतिहासिक रूप से उन प्रथाओं और प्रणालियों से जुड़ा है, जिसने दलितों का सामाजिक बहिष्कार किया तथा उन्हें मानसिक, सांस्कृतिक, शारीरिक और नैतिक रूप से तिरस्कृत किया। दलित साहित्य के माध्यम से दलित समुदाय ने अपनी परिस्थिति, अपनी पीड़ा और अपना संघर्ष प्रस्तुत किया तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक समानता की मांग उठाई। दलित साहित्य मानव-मानव में भेद नहीं करता। वह विषमता, प्रताड़ना, शोषण तथा जाति-भेद का विरोध करता है। दलित साहित्य प्रत्येक मनुष्य को समान दृष्टि से देखता है। संपूर्ण संसाधनों पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार मानता है। इस विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- "धार्मिक आडम्बरों, कर्मकांडों, अन्धविश्वासों, अनैतिक जीवन-मूल्यों के विरुद्ध संघर्ष का आगाज सुनाई पड़ता है। इस क्रान्तियुग के हम साक्षी हैं। हमारा एक-एक शब्द विषमता, शोषण, प्रताड़ना की आग से तप कर निकला है। कविता की एक-एक पंक्ति रक्तरंजित होकर कागज पर उतरी है। कथा-कहानी के तमाम पात्र जीवन-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की लड़ाई लड़ रहे हैं। हमारी लड़ाई सिर्फ भूख की लड़ाई नहीं है। न सिर्फ सत्ता पा जाने की लड़ाई है। हमारी लड़ाई उससे कहीं आगे जाती है। जहाँ मानव निर्मित व्यवस्थाएँ बनाई गई हैं, जिसने जाति, सम्प्रदाय, भाषावाद, लिंगभेद, रंगभेद पैदा किए हैं, उसके विरुद्ध है। विषमता के खिलाफ यह जंग सामाजिक क्रान्ति की जंग है। जो समता, बन्धुता की स्थापना के लिए कटिबद्ध है। साहित्य वास्तव में समाज का दर्पण बने, यह पहल दलित साहित्य ने की है। दलित साहित्य ने साहित्य को कलावाद, तत्वज्ञान, दार्शनिकता जैसे छद्म और भ्रमित करने वाले साहित्यिक, शास्त्रीय, काव्य शास्त्र से बाहर निकाला है। जीवन-मूल्यों और सौन्दर्यबोध को एक-दूसरे से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति विकसित की है।"[7]

दलितों की समस्याओं को उजागर करने के लिए दलित साहित्य के पास विभिन्न विषय हैं जो दलितों की पहचान को उजागर करते हैं। उन्हें भारत का मूल निवासी होने की पहचान देते हैं। जातिवादी मानसिकता को उजागर करना हिंदी दलित साहित्य का मुख्य विषय है। कुप्रथाओं, कुरीतियों के आधार पर दलितों को सामाजिक, शारीरिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मानसिक और

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

नैतिक रूप से प्रताड़ित किया जाता रहा है। इस प्रताड़ना का सचित्र वर्णन हिंदी दलित साहित्य में बार-बार किया गया है जिसके माध्यम से वे अपने जीवन के दुःख-दर्द, कष्ट, संघर्ष, अपमान आदि को सबके सामने रखते हैं। दलित साहित्य सबको मनुष्य होने का एहसास कराता है। भारतीय समाज में जहां पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, नदी-नालों सबको पूजा जाता है, वहीं दलितों के साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया जाता रहा है। दलित साहित्यकार इन अपमानों को अपनी रचनाओं में उजागर करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- "दलित अस्मिता और दलित-संघर्ष की जद्दोजहद के लिए मैंने अपनी प्रतिबद्धता से कोई समझौता नहीं किया। मेरी कहानियों में दलित पात्र अपने स्वाभिमान, आत्मविश्वास के लिए संघर्ष करते हैं और जातीयहीनता से मुक्त होने की जद्दोजहद करते हैं। दलित जीवन के ऐसे अनेक पहलुओं से पाठकों का परिचय होता है जिनसे हिन्दी जगत अनभिज्ञ था।"[8]

हिंदी दलित साहित्य दलितों के समान अधिकारों की अपेक्षा करता है। यह साहित्य सामाजिक समता, समानता और बंधुत्व की ओर एक ठोस कदम स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। दलितों के हक की लड़ाई बुलंद करता है। उनके जीवन की विशेषताओं को स्थापित करने के लिए संघर्षरत है। दलित साहित्य का मुख्य लक्ष्य सामाजिक भेदभाव, असमानता की जंजीर को तोड़ने और सभी को समता, समानता का अवसर प्राप्त हो ऐसा उसका प्रयत्न है। दलित साहित्य दलितों के सांस्कृतिक अस्तित्व की खोजबीन करता है। दलितों के संघर्ष, उनके इतिहास और उनकी सामाजिक परिस्थितियों के विषय में अपना मत प्रस्तुत करता है। दलित साहित्य जाति को नष्ट करने का हिमायती है। जाति को खत्म करने के बाद ही समाज का विकास संभव है। साहित्य के जरिए दलित अपने इतिहास, अपनी भाषा और संस्कृति को फिर से वर्णित करने की कोशिश करता है, ताकि उनके इतिहास को जाना जा सके। "'जाति का विनाश' में डॉ. आंबेडकर विस्तार से बताते हैं कि वर्ग-व्यवस्था एक वाहियात व्यवस्था है, जिसे बनाए रखकर भारत ने गंभीर दुष्परिणाम भोगे हैं। उन्होंने विभिन्न सामाजिक आंदोलनों जैसे प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज, आर्य समाज और कुछ समाजवादी आंदोलनों की भी इस किताब में खबर ली है, जो येन-केन-प्रकारेण वर्णव्यवस्था के ही समर्थक रहे। उन्होंने सबसे कटु आलोचना आर्य समाज की की थी, जिसने न केवल वर्णव्यवस्था को एक आदर्श

व्यवस्था माना बल्कि मनु की समाज व्यवस्था में भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। उन्होंने समाजवादियों की आलोचना करते हुए कहा कि जाति के राक्षस को मारे बिना वे कोई क्रांति नहीं कर सकते।"[9]

वर्तमान में हिंदी दलित साहित्य का असर तीव्र गति से बढ़ रहा है। दलित साहित्य ने न सिर्फ साहित्य के क्षेत्र पर अपना असर डाला है, बल्कि यह सामाजिक मुद्दों, आंदोलनों और क्रांतियों में भी मुख्य भूमिका का निर्वाह कर रहा है। दलित साहित्य के जरिए दलितों के दुःख-दर्द, उनके संघर्ष को और ज्यादा मजबूत स्वरूप में सामने लाया जा रहा है। दलित साहित्य सामाजिक असमानता, छुआछूत और भेदभाव खत्म करने का महत्वपूर्ण हथियार बन चुका है। दलित साहित्य ने यह भी स्पष्ट किया है कि सामाजिक समता और समानता की बहुत जरूरत है तथा यह सिर्फ दलितों के हितों के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भारतीय समाज के लिए आवश्यक है। वर्तमान में हिंदी दलित साहित्य का स्वरूप बदला है। अपनी पहचान बनाई है और सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक मूल्यों को दृढ़ता से स्थापित किया है। हिंदी के कई विद्वान और आलोचक दलित साहित्य की चेतना और आंतरिक भाव को समझने को तैयार नहीं हैं, बल्कि उन्हें साहित्य की शास्त्रीयता सिखाने पर पूरा बल देते हैं। कई रचनाकार जो स्वयं को मार्क्सवादी कहते हैं परंतु अपनी रचनाओं का प्रेरणास्रोत धार्मिक ग्रंथो और वेदों को मानते हैं। मार्क्सवादी रचनाकार दोहरे मानदंडों में फंसकर रह गए हैं, जो समानता की विचारधारा के पक्षधर होने के बाद भी वर्ण-व्यवस्था बनाए रखने में विश्वास रखते हैं। ऐसे रचनाकारों के लिए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- "हिन्दी साहित्य परम्परागत जीवन-मूल्यों से मुक्त नहीं हुआ है। आधुनिक भी है और परम्परागत मूल्यों को जीनेवाला भी। एक ही व्यक्ति मार्क्सवादी भी है और तुलसी-भक्त भी। आधुनिक भी है, और वर्ण-समर्थक भी, जाति की श्रेष्ठता में डूबा हुआ भी और समता के विचार का पक्षधर भी। इसीलिए भारतीय समाज आज भी द्वेषपूर्ण संस्कारों को जीने के लिए अभिशप्त है। जो विद्वान, बुद्धिजीवी, लेखक, कवि, कलाकार आधुनिक जीवन के पक्षधर दिखाई देते हैं, घर की देहरी पर पितृसत्तात्मक मूल्यों के पैरोकार बने हुए हैं। स्त्रियों के प्रति उनके नजरिये में मध्यकालीन पुरुष की संकीर्णता विद्यमान है। भविष्य के प्रति आशंकित ये लोग आज भी नए बदलाव को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं।"[10]

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

दलित साहित्य का उद्भव भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक असमानता तथा जातिवाद के विरोध में एक मजबूत क्रांति के सूरत में हुआ है। दलित साहित्य न तो सिर्फ दलितों की पीड़ा, दुःख-दर्द, संघर्ष और उनके उत्पीड़न को सामने लाता है, बल्कि यह सामाजिक रूप से न्याय, समता, समानता और स्वतंत्रता की जरूरत को स्पष्ट करता है। हिंदी दलित साहित्य के जरिए भारतीय समाज में एक नवीन जागृति का विस्तार हुआ है तथा समाज के प्रत्येक वर्ग को एक समान अवसर और अधिकार प्रदान करने की दिशा में प्रेरणा स्रोत के रूप में निर्मित हुआ है। कुछ सवर्ण लेखक भी ऐसे हुए हैं जिन्होंने दलितों के दुःख-दर्द, पीड़ा को समझते हुए उनकी तड़प की यथार्थता को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। एक ऐसे ही लेखक हुए हैं 'नागार्जुन' जिन्होंने दलितों की पीड़ा, दुःख-दर्द को यथार्थता से समझने की कोशिश की। नागार्जुन यथार्थवादी एवं प्रगतिशील विचारधारा के प्रमुख उपन्यासकार हैं। उन्होंने 'हरिजन गाथा' नामक कविता लिखकर दलित यथार्थ वर्णित किया है। नागार्जुन ने तात्कालिक लेखन परंपरा को तोड़कर हिंदी साहित्य में दलित यथार्थ लिखने की शुरुआत की। इस संदर्भ में खगेंद्र ठाकुर कहते हैं- "नागार्जुन के लिए यथार्थवादी समझ न कोई काव्यात्मक फैशन है और न किसी सैद्धान्तिक दबाव का परिणाम। सिद्धान्ततः नागार्जुन मार्क्सवादी हैं और मार्क्सवाद को अपने जीवन की चरम उपलब्धि मानते हैं। लेकिन उनकी यथार्थवादी समझ मार्क्सवाद के दबाव से पैदा नहीं होती बल्कि मनुष्य और समाज के अन्तःसम्बन्धों को समझने के लिए मार्क्सवाद की वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया है। इस पद्धति से प्राप्त दृष्टि और समझ ने नागार्जुन के काव्य को अनोखी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान की है।"[11]

नागार्जुन ने 'हरिजन गाथा' कविता का आधार बिहार में राजनीति और जातीय संकीर्णता के चलते उस समय घटित एक घटना को बनाया था। जिसमें 13 दलितों को जिंदा जला दिया गया था। इस घटना से नागार्जुन इतने दुःखी हुए कि उन्होंने उस घटना को ऐतिहासिक रूप से नृशंस हत्याकांड माना और अपना दुःख व्यक्त करने के लिए 'हरिजन गाथा' नामक कविता लिखी। 'हरिजन गाथा' कविता की अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मकता के साथ किया। इसके संदर्भ में मैनेजर पांडे लिखते हैं- "जब एक कवि की सामाजिक संवेदनशीलता अपने समय की दहकती वास्तविकता का साक्षात्कार करती है तो उससे इतिहास की गति को पहचानने वाली 'हरिजन-गाथा' जैसी कविता पैदा होती है।"[12]

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

डॉ. अंबेडकर दलित साहित्य के जन्मदाता कहे जाते हैं। डॉ. अंबेडकर की दलित साहित्य में विशेष भूमिका रही है। उनके विचारों और लेखों ने दलित समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और नैतिक जागरूकता लाने में विशेष भूमिका निभाई है। उनकी पुस्तक 'जाति प्रथा का विनाश' ने जातिवाद की यथार्थता को प्रकट किया। इस पुस्तक में भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंडों, सामाजिक असमानताओं और जाति-व्यवस्था की कड़ी आलोचना की गई है। वे न सिर्फ भारतीय समाज में दलितों के हक, अधिकारों के लिए प्रयासरत रहे, बल्कि उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में तथा बौद्धिक नजरिए से भी दलितों की प्रगति के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। वे दलित लेखकों के पथप्रदर्शक हैं। अंबेडकर जी की भागीदारी मुख्य रूप से सामाजिक न्याय, समता, बंधुता, स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांत को सुनिश्चित करती है। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, भेदभाव, जातीय-भेद, छुआछूत और असमान सामाजिक परंपराओं के विरोध में स्वर बुलंद किया। उनके मत ने हिंदी दलित साहित्य को एक नवीन दृष्टि प्रदान की, जो सामाजिक विषमता, उत्पीड़न, प्रताड़ना और शोषण का विरोधी था। उनकी यह भागीदारी दलित रचनाकारों को प्रोत्साहित करती है कि वे अपनी रचनाओं, कविताओं, लेखों और कहानियों में समता, समानता, नैतिकता, स्वतंत्रता और भाईचारे का पैगाम दें। इस तरह, हिंदी दलित साहित्य में डॉ. अंबेडकर का योगदान न सिर्फ विवेचनात्मक था, बल्कि उन्होंने इसे सामाजिक विरोध, न्याय, संघर्ष और परिश्रम को एक विशेष उपाय के रूप में स्थापित किया। उनका संघर्ष, उनके कार्य, विचार और सिद्धांत आज भी दलित रचनाकारों, आंदोलनों तथा बदलाव के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभा रहे हैं। दलित साहित्य के प्रमुख रचनाकारों और आलोचकों में एक नाम डॉ. अंबेडकर का लिया जाता है। उनकी रचनाएं दलितों के लिए संघर्ष, विरोध, अधिकारों की प्राप्ति, समता और समानता की ओर एक मजबूत परामर्शदाता की भूमिका में है। 'जाति प्रथा का विनाश' उनकी एक विशेष रचना है, जिसमें उन्होंने जातिवाद के विरोध में एक आंदोलनकारी अभिमत प्रस्तुत किया है। वे अपनी रचना 'जाति उन्मूलन' में पूछते हैं- "आपसे यह अवश्य पूछा जा सकता है कि यदि आप जाति के विरुद्ध हैं, तो आपके विचार से आदर्श समाज किसे कहा जा सकता है? अगर आप मुझसे पूछें तो मेरा उत्तर होगा, जो स्वाधीनता, समानता और भाईचारे पर आधारित हो।"[13]

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

डॉ. अंबेडकर भारतीय संविधान के निर्माता हैं। उन्होंने दलितों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए अनेक प्रावधान किए हैं। दलित साहित्यकारों का मार्गदर्शक के रूप में कार्य किया है। भारतीय संविधान ने दलितों को एक समान अधिकार प्रदान किए हैं, जिसके माध्यम से दलितों को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक अभिव्यक्ति के नवीन सुअवसर प्राप्त हुए हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया तथा लाखों दलितों को बौद्ध धर्म अपनाने के लिए उत्साहित किया। उनकी साहित्यिक रचनाओं में बौद्ध धर्म का प्रभाव दिखाई देता है। अंबेडकर जी ने साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की, क्योंकि उन्होंने बौद्ध धर्म के विचारों के जरिए दलितों को सामाजिक समता, समानता, बंधुत्व और आत्मसम्मान के लिए प्रेरित किया। उन्होंने सदैव समता, समानता, शिक्षा, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता को विशेष माना। उनकी दृष्टि में दलित साहित्य परिश्रम, संघर्ष, स्वतंत्रता और मुक्ति प्राप्ति के लिए आवश्यक है। उन्होंने प्रतिरोध की भावना को महत्वपूर्ण माना है। अब दलित एक आजाद तथा स्वाभिमानपूर्ण जिंदगी, अपने हक-अधिकारों के लिए विचार-विमर्श करता है। डॉ. अंबेडकर की मनोवृत्तियों ने दलित साहित्यकारों में सामाजिक जागरूकता का प्रचार-प्रसार किया। उनकी विचारधारा और कार्यों ने दलित रचनाकारों को उनके भावों, अनुभवों, विचारों और संघर्षों को साहित्य के जरिए अभिव्यक्त करने की अभिप्रेरणा दी। उन्होंने यह प्रेरणा दी कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम हो सकता है।

दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित आत्मकथा 'जूठन' हिंदी दलित साहित्य की एक विशेष रचना है। इस रचना में वाल्मीकि जी ने अपने जीवन के संघर्षों, अनुभवों और कठिनाइयों के जरिए जातिवादी विचारधारा और सामाजिक विभिन्नताओं को प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाएं दलित वर्ग की समस्याओं, कठिनाइयों, अवरोधों, रुकावटों और संघर्षों को सक्रिय रूप से उजागर करती हैं। दलित साहित्य की वास्तविकता बताते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- "दलित साहित्य केवल दलितों के अधिकार और उनके जीवन-मूल्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक सन्दर्भों के साथ जुड़कर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बना है। इसी तरह दलितों की वेदना का स्वर दलित साहित्य की अन्तर्धारा का पर्याय है। यह वेदना हजारों वर्षों की है। यह वेदना सिर्फ 'मैं' की नहीं, समूचे समाज की वेदना है। इसीलिए सामाजिक यथार्थ दलित साहित्य का प्रमुख स्वर है।"[14]

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म उत्तर प्रदेश में स्थित गाजियाबाद जिले के एक ग्रामीण इलाके में 1950 में हुआ था। वह एक वाल्मीकि परिवार में जन्मे थे, जिन्हें भारतीय समाज के सवर्ण जातियों ने हमेशा निम्न माना और उन्हें अपमानित किया जाता रहा। उनकी बाल्यावस्था दुःख, अभावग्रस्त, उलझनों, उलाहनों और मानसिक उत्पीड़न के मध्य गुजरा। इस एहसास ने उन्हें अपने समाज का दुःख-दर्द, पीड़ा, संघर्ष, प्रताड़ना और यातनाओं को जानने तथा उसे शब्दबद्ध करने की अभिप्रेरणा प्रदान की। उनकी रचनाओं में इस दर्द, पीड़ा, प्रताड़ना और संघर्ष का गंभीर असर दिखाई पड़ता है। हिंदी दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि का विशेष योगदान रहा है। वो हिंदी दलित साहित्य के मुख्य दलित रचनाकार हैं, जिन्होंने दलित समुदाय की असमानताओं, कठिनाइयों, उत्पीड़न और विरोध को साहित्य के जरिए प्रकट किया। उनकी रचनाओं ने न सिर्फ दलित समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक स्थिति को बताने की कोशिश की है, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज की चेतना और संवेदना को सतर्कता के साथ सामने रखने में विशेष भूमिका निभाई है। वाल्मीकि जी ने अपने कलम के जरिए दलितों के दुःख-दर्द, पीड़ा, प्रताड़ना, संघर्ष और उनकी मानवतावादी दृष्टिकोण की सुरक्षा का दृढ़-निश्चय किया। उनके लेखकीय सहयोग ने दलित क्रांति, आंदोलन और संघर्ष को एक नवीन दृष्टि प्रदान की तथा भारतीय समाज में फैले जातिवाद, भेदभाव, छुआछूत और असमानता को ललकारा। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिंदी दलित साहित्य को नई ऊंचाई प्रदान की। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि हिंदी दलित साहित्य ने भारतीय समुदाय के एक विशेष अंश को स्वर प्रदान किया। वाल्मीकि जी ने साहित्य को सिर्फ एक कौशल ही नहीं माना, बल्कि उन्होंने इसे समाज की उन्नति में एक असरदार उपाय के स्वरूप में पेश किया।

हिंदी दलित साहित्य लेखन की शुरुआत बहुत बाद में हुई। हिंदी दलित साहित्य भारतीय साहित्य के उस विशेष प्रवाह का भाग है जो मुख्य रूप से समाज के पीड़ितों, वंचितों, प्रताड़ना के शिकार वर्गों, विशेषकर दलितों की चेतना, अनुभवों और उनके भीतरी संसार को सामने रखता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस साहित्यिक क्रांति को दृढ़ता दी तथा इसे एक विशेष स्थान दिलाया। उनकी रचनाएं प्रमुखतः दलितों के जीवन, उनकी पीड़ा, उनके दुःख-दर्द, उनके संघर्ष, उनके विरोध तथा उनके पहचान को स्थापित करती हैं। हिंदी दलित साहित्य लेखन के शुरुआती लेखकों ने अपने भोगे हुए दर्द को

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

जस की तस उकेरने का काम किया। लेकिन तात्कालिक आलोचकों ने उनकी रचनाओं को नकारा या फिर उसमें बस कमियां ही निकाली। दलित संघर्ष की जद्दोजहद उन्हें बहुत छोटी बात लगती थी, जिसे कहना बेफजूल था। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- "मेरी कहानियों में जो सामाजिक रिश्ते हैं, उनमें वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था का विद्रूप अपनी पूरी दग्धता के साथ दिखाई पड़ता है जिसे कई आलोचक लाउडनैस कहकर खारिज करने की कोशिश करते हैं। साथ ही मेरी कहानियों में जो आक्रोश दिखाई पड़ता है। वह आरोपित नहीं, बल्कि हजारों साल की चुप्पी जब टूटती है, तब एक दलित का स्वर कैसा होना चाहिए, यह जानना भी जरूरी है। तब ही इस आक्रोश को स्वाभाविक रूप में ही समझा जा सकता है। इसके बाद भी यदि दलित आक्रोश को कोई अस्वाभाविक कहता है, तो फिर कुछ कहने लायक बचता ही कहाँ है।"[15]

वाल्मीकि जी का पहला काव्य संग्रह 'सदियों का संताप' है जिसने उन्हें दलित साहित्य के एक विशेष व्यक्तित्व के स्वरूप में प्रतिष्ठित किया। इसके माध्यम से उन्होंने उन प्रश्नों, विचारों तथा चिंताओं को जगाया, जो दलित समुदाय के लोगों द्वारा आजीवन भोगा गया था। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी रचनाओं में जीवन की कठोर, यथार्थ सच्चाई उजागर किया है। वो अपनी पहचान की सुरक्षा तथा अपनी अस्मिता की रक्षा की कामना प्राथमिकता से करते हैं। वो अपनी रचनाओं के माध्यम से दलितों के दुःख-दर्द, कष्ट, उत्पीड़न के विरोध में स्वर बुलंद करते हैं। उनकी रचनाएं दलित जीवन की सच्चाई के साथ-साथ विरोध का भाव प्रकट करती हैं। उनकी रचनाएं सदियों से चले आ रहे सामाजिक उत्पीड़न, छुआछूत, जातीय अपमान का यथार्थ चित्रण करती हैं। शोषक और सामंती व्यवस्था के खिलाफ कड़ा विरोध तथा आक्रोश प्रदर्शित करती हैं। दलित साहित्य दलित जीवन के मानवीय अधिकारों, संघर्षों, समानताओं और स्वतंत्रता की मजबूत समर्थक है।

वाल्मीकि जी की सुप्रसिद्ध रचना 'जूठन' आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। 'जूठन' सिर्फ उनकी निजी कथा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के सभी पीड़ितों, दबे-कुचले लोगों, दलितों का दर्द है। उनकी आत्मकथा हिंदी दलित साहित्य का 'मील का पत्थर' साबित हुआ। उन्होंने इस आत्मकथा में अपने बाल्यावस्था की कथा बेहद भावपूर्ण तरीके से सुस्पष्ट भाषा में लिखी है। यह रचना उनके उत्पीड़न का प्रस्तुतिकरण करती है। इसमें वाल्मीकि जी ने भारतीय समाज में स्थापित

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

जातिवाद, वर्ण-व्यवस्था, सांस्कृतिक असमानता और दलितों का विरोध, समाज में फैली पूर्व धारणाओं, कुरीतियों का उल्लेख किया है। उन्होंने 'जूठन' में अपनी अनुभूति न सिर्फ निजी दर्द के स्वरूप में पेश किया है, बल्कि उन्होंने दलित समुदाय का बड़े पैमाने पर सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि जी की आत्मकथा न सिर्फ दलित समुदाय के मुद्दों को प्रस्तुत करती है, बल्कि यह सम्पूर्ण समाज में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का आत्म-विश्लेषण करने के लिए प्रोत्साहित करती है। उन्होंने अपनी लेखनी के जरिए यह साबित किया कि दलितों को सिर्फ शिक्षा, समता, समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक रूप से सम्मान ही नहीं, बल्कि उनके पहचान को भी प्रमुखता प्राप्त होनी चाहिए। वाल्मीकि जी ने अपनी कृतियों के द्वारा दलितों को एक नवीन पहचान प्रदान करने की चेष्टा की तथा उन्हें अपने अस्तित्व पर नाज करने के लिए प्रोत्साहित किया। रमणिका गुप्ता के लेखों का संपादन करते हुए वाल्मीकि जी लिखते हैं- "हिंदी दलित साहित्य परिदृश्य को समझने के लिए इसकी पृष्ठभूमि को जानना जरूरी है। हिंदी दलित साहित्य अनेक उत्तार-चढ़ाव से गुजरा है। उन तमाम स्थितियों के साथ ही दलित साहित्य की सीमाओं, चुनौतियों, दशा और दिशा का मूल्यांकन हो पाएगा। अतीत की कंटीली और दुरुह यात्रा की पड़ताल वर्तमान सन्दर्भों के आधार पर की जा सकती है।"[16]

हिंदी दलित साहित्य की यथार्थता उसके कथावस्तु, केंद्रबिंदु, वातावरण और भाषा-शैली में निहित है। हिंदी दलित साहित्य आत्मकथात्मक शैली में प्रमुखता से लिखी गई। दलित रचनाकारों ने अपने निजी अनुभूतियों, अनुभवों, द्वंद्वों और संघर्षों की भागीदारी सामाजिक वास्तविकता को स्पष्ट किया है। कंवल भारती हिंदी दलित साहित्य के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उनकी प्रमुख रचना 'दलित विमर्श की भूमिका' है। इस रचना में लेखक ने दलित-विमर्श, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, विभिन्न कालों में दलितों की स्थिति का वर्णन किया है। उन्होंने हिंदी दलित साहित्य में अपना विशेष सहयोग प्रदान किया है। उनकी रचनाएँ दलितों के दुःख-दर्द, पीड़ा और संघर्ष को स्पष्ट करती हैं। भारती जी ने अपनी रचनाओं में दलितों के अस्तित्व की यथार्थता और सामाजिक रूप से उनके उत्पीड़न की समस्याओं, उनके संघर्ष को न सिर्फ प्रकट किया गया, बल्कि उनके लिए एक न्यायसंगत समुदाय का दावा भी किया है। रमणिका गुप्ता लिखती हैं- "दलित साहित्य की परिभाषा और सीमा उतनी ही

है जितनी मनुष्यता की सीमाएँ। इस दृष्टि से दलित साहित्य आज की सोच का प्रतिनिधित्व करता है।"[17]

हिंदी दलित साहित्य का आत्मकथात्मक दृष्टिकोण साहित्यिक रूप से भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक असमानताओं और परिस्थितियों का सुधार करने वाला रहा है। हिंदी दलित साहित्य एक विशेष साहित्यिक विचारधारा के स्वरूप में उजागर हुआ है, जिसका लक्ष्य भारतीय समुदाय में समाहित असमानता, भेदभाव, जातिवाद, छुआछूत, प्रताड़ना और शोषण का विरोध करना है। इस साहित्य में दलित समाज के संघर्षों, अनुभवों, समस्याओं, उनके दुःख-दर्द और उनके द्वंद्वों को महत्वपूर्ण स्वरूप में पेश किया गया है। हिंदी दलित साहित्य का आत्मकथात्मक नजरिया एक ऐसा प्रभावशाली हथियार है, जिससे दलित समुदाय में आंतरिक रूप से अदृश्य भेदभाव, अत्याचारों, विषमताओं और असमानताओं को सामने लाया जा सकता है। यह दृष्टिकोण निजी तजुर्बे, और आत्मकथाओं के जरिए जातिवाद की कठिनाइयों, जटिलताओं, विरोधों, संघर्षों, असमानताओं और दलितों की सामाजिक स्थिति को जानने में एक मजबूत पद्धति का कार्य करता है। अभय कुमार दुबे कहते हैं- "कला और मुक्ति कामना का सर्वाधिक सम्पूर्ण, सतत और निर्वाध समागम केवल दलित साहित्य में ही मिलता है। दलित साहित्य में यह विलक्षणता इसलिए है क्योंकि उसके रचयिता को मुक्ति की किसी भी अन्य भारतीय के मुकाबले अधिक जरूरत है।"[18]

हिंदी साहित्य पर हिंदू साहित्य होने का आरोप लगता रहा है। इस आरोप के विरोध में पूरा हिंदी साहित्य जगत आ जाता है। हिंदी आलोचक इस आरोप को एक सिरे से खारिज कर दलित लेखकों की बुद्धि और समझ को निम्नतम आंकते हैं। दलित रचनाकार अपना अलग सौंदर्यशास्त्र गढ़ने की बात करते हैं, क्योंकि वे दलित साहित्य के आकलन का आधार वर्णवादी, ब्राह्मणवादी तथा सामंतवादी सौंदर्यशास्त्र को नहीं बनाना चाहते हैं। सुधीर पचौरी कहते हैं- "जाहिर है इन नए विपर्यायों को यथार्थवाद की चालू आदत से नहीं पढ़ा जा सकता। 'साहित्य सबके लिए प्रतिनिधित्व करता है' यह प्रस्ताव इन दिनों बुरी तरह विचलित हो रहा है। क्या इस विचलन की वजह से ही इतना वृत्तान्त लिखा जा रहा है कि शुमार नहीं? क्या हिन्दी में चल रहे वृत्तान्त कथन का कोई एक मुकम्मल नक्शा बना सकते हैं, जिससे एक-एक नमूना सबका आ जाए और उस जंजाल में देखा जाए कि कोई भी

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 14-Issue 03, (July-Sep 2026)

विमर्श अन्तिम और एकबारगी सर्वोत्तम और अद्वितीय नहीं रह गया है? इससे हमें शहरी मध्यवर्गीय साहित्यिक अवधारणाओं से मुक्ति मिल सकती है, जो सत्ताशाली विमर्शों से चालित कथारूपों को ही कथा मानता है।”[19]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में हिंदी दलित साहित्य की विशेष भागीदारी रही है। दलित रचनाकारों की रचनाएं न सिर्फ हिंदी दलित साहित्य को विकसित करती हैं, बल्कि यह समुदाय के प्रत्येक नागरिक को यह बताती हैं कि भेदभाव, जातिवाद, छुआछूत और असमानता को खत्म करने के लिए सभी नागरिकों के आंतरिक दुराग्रह को समाप्त करना होगा। दलित साहित्य प्रताड़ित, शोषित, वंचित, अछूत और पीड़ित वर्ग के जीवन संघर्ष, उनके कष्ट, प्रताड़ना, शोषण को व्यक्त करता है। यह विषमता, सामाजिक व्यवस्था, रूढ़िवादी परंपरा, जातीय भेदभाव के खिलाफ विरोधी स्वरूप प्रकट करता है। दलित साहित्य यथार्थवादी अनुभवों को प्राथमिकता देता है न की कल्पना को। इसमें वर्षों के शोषण, अपमान और अन्याय के विरोध में तीव्र विद्रोह की झलक दिखाई देती है। दलित रचनाकारों ने आत्मकथात्मक शैली में रचना लिखकर समाज का यथार्थ स्वरूप उजागर किया है। दलित साहित्य अपनी रचनाओं को कलात्मक रूप देने की बजाय, जीवन का यथार्थ वर्णन करने का लक्ष्य निर्धारित करता है। दलित साहित्य वर्तमान समय में उन सभी नागरिकों को प्रोत्साहित करता है जो एक समान, न्यायपक्ष और न्यायसंगत समुदाय की नींव रखने के लिए द्वंद्व कर रहे हैं। जो सम्पूर्ण समाज के सच्चे हितैषी हैं।

संदर्भ:-

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, दिल्ली : राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, पृ-7
2. भारती, कँवल, दलित विमर्श की भूमिका, इलाहाबाद : इतिहास बोध प्रकाशन, 2007, पृ-59
3. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, दिल्ली : राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, पृ-141
4. भारती, कँवल, दलित विमर्श की भूमिका, इलाहाबाद : इतिहास बोध प्रकाशन, 2007, पृ-62

5. बागुल, बाबूराव, दलित साहित्य : उद्देश्य और वैचारिकता, वसुधा, अंक-58, जुलाई-सितम्बर, 2003, पृ-39

6. भारती, कँवल, दलित विमर्श की भूमिका, इलाहाबाद : इतिहास बोध प्रकाशन, 2007, पृ-53

7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, दिल्ली : राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, पृ-86-87

8. वही, पृ-22

9. भारती, कँवल, दलित विमर्श की भूमिका, इलाहाबाद : इतिहास बोध प्रकाशन, 2007, पृ-68

10. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, दिल्ली : राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, पृ-35

11. वही, पृ-147

12. वही, पृ-148

13. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड-1, 2020, पृ-66

14. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, दिल्ली : राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, पृ-73

15. वही, पृ-22-23

16. गुप्ता, रमणिका, दलित हस्तक्षेप सं. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दिल्ली : अक्षर शिल्पी प्रकाशन, 2012, पृ-7

17. वही, पृ-8

18. गुप्ता, रमणिका, दलित चेतनाः साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, दिल्ली : समीक्षा प्रकाशन, 2011, पृ-7

19. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, दिल्ली : राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, पृ-41-42